पाठ्यपुस्तकों का अस्तित्व

स्मृति

लेखक परिचय :

लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली में आरंभिक शिक्षा विभाग में अध्यापन, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा कक्षा 3 के लिए पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तक समिति की सदस्या

सम्पर्क :

KU - 15, पीतमपुरा, नई दिल्ली - 110034

पाठ्यपुस्तकों का अस्तित्व क्या है ? पाठ्यपुस्तकों की अहमियत शिक्षा जगत, शिक्षकों, विद्यार्थियों व समाज के लिए क्या है ? आमतौर पर लिखित शब्दों को हमारे देश में प्रामाणिकता की कसौटी माना जाता है। इसके अतिरिक्त पाठ्यपुस्तकों पर केन्द्रित शिक्षण प्रणाली के कारण उसमें लिखे हर शब्द व वाक्य को शिक्षक व शिक्षार्थी आखिरी सच के रूप में स्वीकारने को बाध्य हो जाते हैं। इस पर एक और पक्ष जो पाठ्यपुस्तकों के कथनों को स्वीकारने को बाध्य करता है, वह है परीक्षाएं। आखिर वही 'ज्ञान' 'सत्य' है जो परीक्षाओं के द्वारा तय मापदण्डों पर खरा उतरता है। अक्सर यह 'ज्ञान' पाठ्यपुस्तकों के पन्नों पर लिखा रहता है। अगर एक शिक्षार्थी होकर आप अपने शिक्षक से बहस कर भी लीजिएगा तो भी परीक्षाओं के नतीजे तो सच साबित कर ही देंगे। पाठ्यपुस्तकों के एक और पहलू पर भी गौर करने की आवश्यकता है, और वह है बच्चों की मानसिकता और सोच को प्रभावित करने व समाजीकरण में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका। गौरतलब यह है कि अधिकांश बच्चों के लिए एकमात्र पठन सामग्री स्कूली किताबें ही हैं (जिसके विविध कारणों में उपलब्धता से लेकर तथाकथित समय अभाव शामिल है।)।

ऊपर दिए गए तर्कों पर गौर करें तो पाठ्यपुस्तकों का इस्तेमाल करके एक विशेष विचारधारा को प्रोत्साहित व प्रचलित करने की बात बेमानी नहीं लगती। ऐसा अनेक बार कई राजनैतिक दलों द्वारा सुनियोजित तरीके से किया भी गया है। पाठ्यपुस्तकों द्वारा किसी एक विचारधारा को फैलाने या किसी दृष्टिकोण को न लेने का विवाद एक सामान्य बात बनती जा रही है या शायद बन ही गई है। ऐसा लगभग तय समझा जा रहा है कि राज्य सत्ता में परिवर्तन होगा तो पाठ्यपुस्तकों में उस परिवर्तन की कम से कम छवि तो स्पष्ट रूप से दिखाई देगी - अगर पूरी किताब का ही कायापलट न हो तो भी इस पृष्ठभूमि में बच्चों के मन-मस्तिष्क में वैचारिक आग्रहों को सुविचारित रूप से आरोपित करने के लिहाज से बनी वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000 के आधार पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की पाठ्यपुस्तकें हैं जिन्होंने 'भगवाकरण' का 'सायास प्रयास' किया। स्कूली किताबों को लेकर इतनी व्यापक बहस शायद ही हुई हो जिस पर सभी प्रमुख अखबारों व टी.वी. चैनलों पर चर्चाएं की गई हों। परन्तु अफसोस यह है कि अधिकांश शिक्षकों व शिक्षार्थियों के पास अक्सर केवल पाठ्यपुस्तकें ही पहुंचती हैं। पाठ्यपुस्तकों पर उठे विवाद, उन पर की गई चर्चाएं, बहस व इस तरह के लेख 'आम आदमी' की पहुंच से काफी परे हैं।

पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु कितनी महत्त्वपूर्ण है व इसमें किसी समूह या वर्ग का हस्तक्षेप किसी समाज के लिए कितना भारी पड़ सकता है इसकी कल्पना बच्चों के जीवन में पाठ्यपुस्तकों की अहमियत को देखते हुए की जा सकती है। अक्सर यह माना जाता है कि इतिहास, राजनीति विज्ञान व भाषा-साहित्य की पाठ्यपुस्तकों का इस्तेमाल एक खास एजेण्डा को फैलाने में किया जा सकता है। हाल में ही किए कुछ शोध कार्यों (मसलन निरन्तर संस्था द्वारा किए गए कई राज्यों की पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण) ने इसे गलत ठहराते हुए यह स्थापित किया है कि विज्ञान, गणित व

अन्य पुस्तकों के जरिए भी एक खास दृष्टिकोण का प्रचार किया जा सकता है। इस बात की पुष्टि प्रस्तुत समीक्षा से भी की जा सकती है। समीक्षा की गई पुस्तक कक्षा 11 की 'पर्यावरण शिक्षा' है जो माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर से प्रकाशित की गई है। प्रस्तुत समीक्षा का जोर सिर्फ विषय वस्तु देखने पर नहीं है इसलिए कक्षा 12 की किताब साथ में न देखने से समीक्षा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। समीक्षा मुख्यतः विषयवस्तु व शिक्षाशास्त्र पर केन्द्रित की गई है। चूंकि पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा या विश्लेषण पर बहुत ज्यादा काम हमारे देश में नहीं किया गया है शायद इसीलिए समीक्षा की परिपाटी भी बहुत विकसित नहीं हुई है। इस समीक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 द्वारा सुझाए गए पांच मार्गदर्शक सिद्धान्तों को कसौटी माना गया है। यूं तो यह सिद्धान्त मुख्य तौर पर स्कूली शिक्षा के लिए हैं किन्तु यहां इसका उपयोग पाठ्यपुस्तक की समीक्षा करने के लिए किया गया है। यह माना गया है कि पाठ्यपुस्तकें एक लम्बी शैक्षणिक प्रक्रिया की सृजनात्मक परिणितियां होती हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण, शिक्षाक्रम और पाठ्यचर्या के निर्माण हो चुकने के बाद पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने का काम होता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 को बनाने में वे लोग शामिल हैं जिनका शिक्षा के क्षेत्र में काफी अनुभव व योगदान है व उनमें से कई नवाचार के कार्यक्रम भी चला रहे हैं। बहुत विचार विमर्श, कई राष्ट्रीय चर्चाओं, शिक्षकों व शिक्षार्थियों की राय पूछने के बाद रूपरेखा प्रस्तावित की गई है। राजस्थान राज्य द्वारा बनाई गई पुस्तकों को इन्हीं आधारों पर देखा जा सकता है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 को अपनाने या उसका खंडन करने के राजनैतिक पहलू को नजरअंदाज किया जा रहा है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 का पहला मार्गदर्शक सिद्धान्त है 'ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना'। राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों में दी गई 'जानकारी' का बच्चों के अनुभवजन्य ज्ञान से जोड़ने या समुदाय को ज्ञान के सृजन करने में शामिल करने का कोई प्रयास नजर नहीं आता। कम से कम 'पर्यावरण शिक्षा' की किताब से तो बच्चों को अपने परिवेश पर गौर करवाने की अपेक्षा की जाती है। परन्तु कुछ पन्नों को पलटने के बाद यह उम्मीद धूमिल हो जाती है।

इसके साथ ही पूरी किताब को पढ़ने के बाद भी 'पर्यावरण शिक्षा क्या है' इसकी समझ स्पष्ट रूप से उभर कर नहीं आती। किताब को चार इकाईयों में बांटा गया है - मानव एवं पर्यावरण, पर्यावरण एवं विकास, पर्यावरण प्रदूषण व वैश्विक मुद्दे और ऊर्जा। इन चारों इकाईयों का आपस में संबंध स्थापित करने की कोई कोशिश नजर नहीं आती। फलस्वरूप पूरी किताब जैसे 27 स्वतंत्र अध्यायों का संकलन लगती है और अध्याय महज जानकारियों का संकलन मात्र प्रतीत होते हैं। इस जानकारी में किसी की व्यक्तिगत सोच या फिर पूर्वाग्रह कब शामिल हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। पर्यावरण शिक्षा की यह किताब बच्चों को मूक ग्रहणकर्ता के रूप में देखती है। बच्चों को अपने पर्यावरण पर गौर करने को बढ़ावा देने या अपने स्थानीय परिवेश से उदाहरण सोचने पर प्रेरित करने के कोई प्रयास किताब में नहीं दिखते। पाठ तो जानकारी देने से ही उभर नहीं पाते। हां, पाठ के अंत में कुछ पाठों में आंकिक प्रश्नों को देने की कोशिश (जिसकी असफलता पर परीक्षाओं वाले सिद्धांत में चर्चा की गई है) जरूर की गई है।

दूसरा मार्गदर्शक सिद्धान्त है - 'पढ़ाई रटन्त प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना।' किताब में बिल्कुल इसका उलट सिद्धान्त अपनाने की कोशिश की गई है। भरसक प्रयास किया गया है कि बच्चों में रटने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिले व कहीं गलती से भी बच्चों में समीक्षापरक या तार्किक दृष्टि न विकसित हो जाए। किसी भी तरह के कौशलों को बढ़ावा देन की सोच कहीं नजर नहीं आती। अवलोकन करना, जानकारी जुटाना, तर्क करना, विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना आदि कौशलों का किताब के किसी पन्ने पर ढूंढ़ने से भी कोई जिक्र नहीं मिलता।

विषयवस्तु के प्रस्तुतिकरण में भी कोई सैद्धान्तिक दृष्टिकोण या नजरिया स्पष्ट तौर से नजर नहीं आता। उदाहरण के तौर पर निर्धनता व सम्पन्नता कुछ शीर्षकों के अंतर्गत बिंदुओं के रूप में दिए गए हैं -

(अ) निर्धनता

1. निर्धनता - एक परिचय
2. निर्धनता के कारण
3. निर्धनता का प्रभाव
4. निर्धनता उन्मूलन की योजनाएं
5. निष्कर्ष

(ब) सम्पन्नता

1. सम्पन्नता एक परिचय
2. सम्पन्नता का वर्गीकरण
3. सम्पन्नता के दुष्परिणाम
4. निष्कर्ष (पृष्ठ 91-93)

हैरानी की बात यह है कि कक्षा 11 के छात्रों के लिए इतनी जटिल संरचनाएं तीन पन्नों में समा दी गई हैं। आश्चर्यजनक यह भी है कि कहीं पर भी किसी समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ, नृशास्त्री आदि का कोई जिक्र नहीं है। केवल इसी संदर्भ में ही नहीं पूरी किताब में भी इनका या किसी और शोधकर्ता का कोई विशेष ब्यौरा नहीं है। फिर भी कहीं कहीं पर ''कुछ समाजशास्त्री'' (पृष्ठ-91) का तुर्रा जरूर दे दिया गया है और इन्दिरा गांधी, जार्ज बरनॉड शॉ आदि की सूक्तियां भी शायद किसी समझ का प्रदर्शन करने के लिए

दी गई हैं। गौर फरमाइए ''हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी'' का जिक्र कहां आता है।

सम्पन्नता के दुष्परिणाम

1. वेश्यावृति

2. मद्यपान (शराबखोरी) हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दो में - ''मैं मद्यपान को, यहां तक कि वैश्यावृत्ति से भी ज्यादा निन्दनीय मानता हूं क्योंकि इसी के कारण अनेक बुराईयां जन्म लेती हैं।'' काफी हैरानी की बात लगती है कि एक ओर तो मद्यपान के दुष्परिणाम बताने के लिए गांधीजी की सूक्ति का सहारा लिया गया है दूसरी तरफ विकास को प्रभावित करने वाले दो कारकों- निर्धनता व सम्पन्नता के सैद्धांतिक विचारों को स्थापित करने के लिए किसी शोध कार्य की आवश्यकता नहीं पड़ी। ऐसी असैद्धांतिक संरचनाएं केवल वैचारिक मालूम होती हैं। आखिर किसने प्रमाणित किया है कि वैश्यावृति, मद्यपान, निम्नवर्ग पर अत्याचार, भ्रष्टाचार व आत्महत्या सम्पन्नता के दुष्परिणाम हैं ? एक और उदाहरण है 'स्लम' शब्द का हिन्दी रूपान्तर। पृष्ठ 70 पर अन्य नगरीय समस्याओं के शीर्षक के अंतर्गत आठवां बिन्दु है। 'गन्दी बस्तियों' का विकास औद्योगिकरण के कारण आवासों की अत्यधिक कमी होने से बड़े-बड़े नगरों में गन्दी बस्तियों का विकास हुआ है। इनमें श्रमिक और गरीब लोग रहते हैं। इन गन्दी बस्तियों में रहने वालों का स्वास्थ्य बिगड़ता है, नैतिक चरित्र गिरता है और आपराधिक प्रवृत्ति बढ़ती है। कानपुर के अहाते, दिल्ली की झुग्गियां, मुम्बई की चाल और चैन्नई की चेरी इनके उदाहरण हैं। इन गन्दे घरों में न हवा, न पानी और न ही रोशनी का प्रबंध होता है।'' किसने व कब स्थापित किया यह सब ? ऐसा सामान्यीकरण जिसके आधार पर 'कुछ वर्गों' को देखने का एक खास नजरिया प्रस्तुत किया जा रहा है, काफी खतरनाक है। 'स्लम' शब्द का हिन्दी रूपान्तर 'गन्दी बस्तियां' काफी आपत्तिजनक है। पाठ्यपुस्तकों में इस तरह के सामान्यीकरण और पूर्वाग्रह समाज में कुछ खास वर्गों के लिए बहुत ही खतरनाक हैं।

'जानकारियां' जिनकी पुष्टि नहीं की गई है, ही किताब का अधिकांश हिस्सा है। एक तरह से यह बातें दूसरे सिद्धान्त के तहत की गई समीक्षा के अन्तर्गत नहीं आती। यह देखते हुए कि कुछ प्रभुत्वशाली लोगों के द्वारा अपने पूर्वाग्रहों व मनमाने ऐजेण्डा को कैसे समाज पर थोपा जा रहा है, किताब के प्रत्यक्ष व निहित शिक्षाशास्त्र की अहमियत और बढ़ जाती है।

तीसरा सिद्धान्त है 'पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुंमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि वह पाठ्यपुस्तक केन्द्रित बन कर रह जाए'। अगर ऐसा हो गया तो शायद कुछ लोगों की सारी रणनीति योजना असफल हो जाएगी। बहरहाल पाठ्यपुस्तकों में यह सुनिश्चित किया गया है कि एक दृष्टिकोण के अलावा विद्यार्थीगण किसी दूसरे ढंग से न सोचने लगें। चूंकि यह सिद्धान्त सीधे तौर पर पाठ्यपुस्तक की समीक्षा के लिए फिट नहीं बैठता इसलिए हम सिद्धान्त के अन्तर्गत अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत विषयवस्तु का विश्लेषण किया गया है। दिया गया उदाहरण लिंग रूढ़िबद्धता के संदर्भ में है। पृष्ठ 70 पर शीर्षक है ''अन्य नगरीय समस्याएं'' जिसके अंतर्गत सातवां बिन्दु है, स्त्रियों की दशा में परिवर्तन - नगरीकरण के साथ स्त्रियों की दशा में भी परिवर्तन हुआ है। उनको आर्थिक स्वतंत्रता मिल रही है, उनमें शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है। उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागृति बढ़ रही है। परन्तु साथ ही साथ उच्छृंखलता, अनुचित यौन संबंध, तलाक, विवाह-पूर्व तथा विवाहेत्तर यौन सबंध, फैशन, भोगवाद आदि भी बढ़ रहे हैं ।'' क्या स्त्रियों की शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता को उच्छृंखलता, अनुचित यौन संबंध, तलाक, फैशन आदि के लिए जिम्मेदार ठहराया जा रहा है? कई जगह पर प्रत्यक्ष व अनेकों जगह पर अप्रत्यक्ष रूप से पारम्परिकता व आधुनिकीकरण को संकीर्ण नजरिए से प्रस्तुत कर परम्परा को आधुनिकता से बेहतर साबित करने की कोशिश की गई है। दिए गए उदाहरण व उस जैसे अनेकों उदाहरणों को पढ़ने के बाद लड़कियों के 'चहुंमुखी विकास' के कल्पना कीजिए। विकास के अवसर प्रदान करने के बजाए किताब स्कूल में उपलब्ध अवसरों को भी खत्म करने पर आमादा लगती है।

चौथा मार्गदर्शक सिद्धांत है - 'परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।' इस सिद्धान्त के बारे में ज्यादा कहने को कुछ है नहीं है क्योंकि किताब कोई गतिविधियां प्रस्तावित ही नहीं करती। किताब में बच्चों की (वैसे तो ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थी युवा हुए) काबलियत पर भरोसा नहीं है और वे 'पर्यावरण शिक्षा' में गतिविधियों को महत्त्वपूर्ण नहीं मानतीं। किताबों में प्रश्न केवल पाठ के अन्त में पूछे गए हैं। इन किताबों को आधार मानकर परीक्षाओं को लचीला बनाना काफी कठिन कार्य होगा। पाठ के अंत में दिए गए प्रश्न महज रटने की क्षमता को आंकते हैं। कहीं-कहीं पर छलावा करने के लिए कुछ आंकिक प्रश्न जरूर दिए गए हैं परन्तु यह भी छठे पाठ तक ही हैं। छठे पाठ के बाद इन्हें क्यों छोड़ दिया गया है इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है। कुल मिलाकर 11 आंकिक प्रश्न हैं जिनका विभाजन इस प्रकार है - रेखाचित्र बनाइए (3), मानचित्र पर दर्शाइए (4), समाचार पत्रों से संकलन कीजिए (3), वाद-विवाद कीजिए (1)। हैरतंगेज बात यह है कि इन प्रश्नों को छोड़ कर बाकी सभी प्रश्नों के उत्तर किताब में ही मिल जाएंगे।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 का पांचवां सिद्धान्त है - ''एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताए समाहित हों ।''

पूरी किताब पहचान तो बनाना चाहती है लेकिन यह पहचान किसकी है और क्या है यह काफी संजीदा विषय है। अव्वल तो किताब में 'भारतीय' व 'हिन्दू' में फर्क नहीं किया गया है और दोनों शब्द पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रतिपादित किए गए हैं । पृष्ठ 39 पर शीर्षक है 'भारतीय दृष्टिकोण' व उसके तुरन्त नीचे की पंक्तियां हैं - ''हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् तथा अन्य शास्त्रों में धरती को माता कहकर संबोधित किया है और पर्यावरणीय शक्तियों को पूज्य माना गया है।''

वेदों की विषय-वस्तु का उदाहरण देकर उनकी सैद्धान्तिक रूप से पुष्टि करने की भी काफी कोशिश की गई है। किताबों में वेदों व अन्य हिन्दू शास्त्रों का उल्लेख करने से तो है ही, किसी और धार्मिक ग्रन्थ का जिक्र न होने से यह और बढ़ जाती है। क्या यह किताबें केवल एक विशिष्ट वर्ग के हिन्दू विद्यार्थी के लिए हैं ? अगर उनके लिए हैं तो भी इस तरह की किताबों से तो एक संकीर्ण नजरिए का ही विकास किया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि मुसलमान, सिख या किसी अन्य धर्म का विद्यार्थी जो यह अंश पढ़ेंगे - सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आचार परक मूल्य।

(अ) सामाजिक मूल्य : मानव ने प्रौद्योगिकी के बल पर पर्यावरण का अत्यधिक अहित किया है। मानव एवं पर्यावरण के मध्य संबंधों की अकथनीय गाथा सामाजिक मूल्यों को उजागर करती है। ये मूल्य बिन्दुवत क्रम में निम्नानुसार विवेचित किए जा सकते हैं -

1. वेदों में पर्यावरण के तीन प्रमुख अवयवों क्रमशः अंतरिक्ष लोक (वायु), पृथ्वी लोक, (मिट्टी/मृदा), द्युलोक (तापमान) का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन तीनों अवयवों से युक्त संपूर्ण जैव मण्डल पिता, माता एवं पुत्र से युक्त एक परिवार के समकक्ष है। इसमें से किसी एक का भी प्रदूषित होना पर्यावरण के प्रदूषित होने का संदेश प्रदान करता है।
2. ऋग्वेद में पर्यावरण संरक्षण की प्रतिबद्धता को अत्यधिक रोचकपूर्ण तरीके से उल्लेखित किया गया है। जैसे - यह पृथ्वी लोक, अंतरिक्ष लोक, द्युलोक, जल, वनस्पतियां सिर्फ एक बार ही जन्म लेते हैं, बार-बार नहीं। अतः उनको संरक्षित करने की आवश्यकता है।
3. राम-रावण युद्ध के दौरान भगवान राम के भ्राता लक्ष्मणजी मूर्छित हो गए थे; उस समय भी संजीवनी नामक वृक्ष से प्राप्त औषधि ने उनके जीवन को बचाया। (पृष्ठ 103)

पर्यावरण शिक्षा के संदर्भ में व कक्षा 11 के स्तर को देखते हुए यह पूरा प्रसंग बेमानी व विचित्र लगता है। क्या हम सभी विद्यार्थियों से अपेक्षा करते हैं कि वह ऋग्वेद व रामायण के परिप्रेक्ष्य से वाकिफ होंगे ? क्या भारत एक लोकतांत्रिक देश नहीं है ? क्या लोकतंत्र का उद्देश्य सभी लोगों से समान व्यवहार नहीं ? क्या अल्पसंख्यक समुदायों का यह अधिकार नहीं कि राष्ट्र द्वारा उनकी विशिष्ट पहचान की रक्षा हो ? क्या किताबों में प्रतिनिधित्व होना उनका अधिकार नहीं ? प्रतिनिधित्व के नाम पर किताब कैसी भ्रांतियां फैलाती है यह देखने के लिए पृष्ठ 101 पर दिया गया एक अंश - हमारे प्रांत राजस्थान में एड्स फैलने के प्रमुख कारण हैं-

1. आदिवासियों में बहुपत्नी प्रथा का होना।
2. मादक दवाओं का सेवन
3. गरीबी के कारण वेश्यावृति की ओर स्त्रियों का उन्मुख होना।
4. एड्स रोग के कारणों की जानकारी नहीं होना
5. महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत विदेशी विद्यार्थी
6. विदेशी पर्यटकों के साथ यौन संबंध स्थापित करना इत्यादि।

क्या आदिवासियों का ऐसा प्रतिनिधित्व जायज है ? लेखकगण आदिवासी समुदाय की किस प्रकार की अधिभावी पहचान बनाने का प्रयास कर रहे हैं ? अगर हम वाकई पर्यटकों द्वारा एड्स फैलाने का प्रमुख कारण मानते हैं तो सरकार (और राजस्थान सरकार का तो इस पर भरपूर जोर है) द्वारा पर्यटन को बढ़ावा देने को विद्यार्थी कैसे समझेगा ? यौन संबंध बनाने वाले व्यक्ति का खुद की निर्णायक क्षमता पर सोचना लेखकगण शायद भूल गए हैं। अफसोसजनक बात यह है कि लिखे गए कारणों का आधार कोई शोधकार्य या अन्य ठोस व पुष्ट आधार नहीं अपितु यह किसी की संकीर्ण मानसिकता से उपजे पूर्वाग्रह हैं।

क्या विद्यार्थियों की मानसिकता पर इस तरह के प्रभाव डालकर हम उनके दिमाग में जहर नहीं घोल रहे ? क्या इस तरह की बातों को आत्मसात करके विद्यार्थी एक दूसरे से अलगाव महसूस नहीं करने लगेंगे ? क्या पाठ्यपुस्तकों का प्रयोग सामाजीकरण के एक हथियार के रूप में कुछ गुटों के प्रति घृणा फैलाने के लिए किया जाएगा ? क्या हम यह मान लें कि सत्ता की शक्ति या संख्या की शक्ति से मिली प्रभुता के बल पर पाठ्यपुस्तकें इस तरह की संकीर्ण अवधारणा प्रतिपादित करेंगी ? किसी भी पाठ्यपुस्तक में (वह भी राज्य सरकार की) हम ऐसी बातों को कैसे लिखे जाने देंगे ? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 के प्रगतिशील विचारों के बाद हम इतनी घटिया विषयवस्तु व शिक्षाशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों को कैसे स्वीकार कर सकते हैं ? क्या हम ऐसी शिक्षा की कल्पना करते हैं जो हमारी सोच को समीक्षापरक व उदार करने की बजाय उसे और संकीर्ण बनाए ? आखिर किसी को तो इन सवालों के प्रति जवाबदेह होना होगा। ◆